आदर्श तपस्वी आचार्य नमिसागर : एक परिचय

आचार्य नमिसागरका जन्म सन् १८८८ में दक्षिण कर्णाटक प्रान्तके शिवपुर गाँव (जिला बेलगाँव) में हुआ। आपका जन्मनाम 'म्होणप्पाहोणप्पा' है। आपके पिताका नाम यादवराव और माताका नाम काला-देवी है। दो वर्षकी अवस्थामें पिताका और १२ वर्षकी अवस्थामें माताका वियोग हो गया था।

प्रारम्भिक शिक्षा

बचपनमें आपको पढ़नेमें रुचि नहीं थी। अपने अध्यापकोंको चकमा देकर स्कूलसे भाग जाते थे और तीन-तीन दिन तक जंगलमें वृक्षोंपर पेटसे कपड़ा बाँधकर चिपके रहते थे तथा भूख-प्यास भी भूल जाते थे। अतएव आपने प्रारम्भिक शिक्षा कर्णाटकीकी पहली दो पुस्तकों भरकी ली।

विवाह और गृहत्याग

सन् १९१४ में २६ वर्षकी अवस्थामें आपका विवाह हुआ, ४ वर्ष बाद गौना हुआ और एक वर्ष तक धर्मपत्नीका संयोग रहा। पीछे उससे एक शिशुका जन्म हुआ, किन्तु तीन माह बाद उसकी मृत्यु हो गई और उसके तीन माह बाद शिशुकी माँका भी स्वर्गवास हो गया।

आप दस-दस, बीस-बीस बैलगाड़ियों द्वारा कपास, मिर्च, बर्तन आदिका व्यापार करते थे। एक दिन आप कपास खरीदनेके लिए जाम्बगी नामके गाँवमें, जो तेरदाड़ राज्यमें है, गये। वहाँ रातको भोजन करते समय भोजनमें दो मरे झिंगरा (एक प्रकारके लाल कीड़े) दीख गये। उसी समय आपको संसारसे वैराग्य हो गया और मनमें यह विचार करते हुए कि "मैं कितना अधम पापी और धर्म-कर्म हीन हूँ कि इस आरम्भ-परिग्रहके कारण दो जीवोंका घात कर दिया।" घर-बार छोड़कर संवेगी श्रावक हो गये। तीन वर्ष तक आप इसी श्रावक वेषमें घूमते रहे। बोरगाँवमें पहुँचकर श्रीआदिसागरजी नामके मुनिराजसे क्षुल्लक-दीक्षा ले ली और फिर दो वर्ष बाद ऐलक-दीक्षा भी ले ली। पाँच वर्ष तक आप इस अवस्थामें रहे।

साधु-दीक्षा

सन् १९२९ में श्री सोनागिरजी (मध्यप्रदेश) में चारित्रचक्रवर्ती तपोनिधि आचार्य शान्तिसागरजी महाराजके निकट साधु-दीक्षा ग्रहण की और उन्हें अपना दीक्षा-गुरु बनाया। क्षुल्लकावस्थासे लेकर आपने जैनविद्री, जयपुर, कटनी, ललितपुर, मथुरा, देहली, लाडनू टांकाटूका (गुजरात), जयपुर, अजमेर, ब्यावर, हाँसी आदि अनेक स्थानों—नगरों तथा गाँवोंमें ३० चातुर्मास किये और भारतके दक्षिणसे उत्तर और पश्चिमसे पूर्व समस्त भागोंमें विहार किया। इस विहारमें आपने लगभग दस हजार मीलकी पैदल यात्रा की और जगह-जगहकी जनताको आत्म-कल्याणका आध्यात्मिक एवं नैतिक उपदेश देकर उनका बड़ा उपकार किया।

आचार्य-पद

सन् १९४४ में आप तारंगामें आचार्य कुन्थुसागरजीके संघमें सम्मिलित हो गये। संघ जब विहार करता हुआ धरियावाद (बागड़) पहुँचा तो आचार्य कुन्थुसागरजीका वहाँ अकस्मात् स्वर्गवास हो गया। संघने पश्चात् आपको तपादि विशेषताओंसे 'आचार्य' पदपर प्रतिष्ठित किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तपस्या और त्याग

आपकी तपस्या और त्याग अद्वितीय रहे। सन् १९२४ में आपने जयपुरमें वहाँके अनाजोंकी भाषाका ज्ञान न हो सकनेसे ८ माह तक लगातार केवल कढ़ीका आहार लिया। सन् १९३१ में देहलीमें प्रथम चातुर्मासमें २१ दिन तक उपवास और बादमें डेढ़ माह तक केवल छाछ ग्रहण की। सन् १९३३ में सरधना (मेरठ) के चातुर्मासमें ३६ दिन तक सिर्फ नीबूका रस लिया। मेरठमें दो माह तक लगातार केवल गन्नेका रस ग्रहण किया। सन् १९४० में जेर (गुजरात) के चौमासेमें साढ़े छह महीनोंमें सिर्फ २९ दिन आहार और शेष दिनोंमें १६४ उपवास किये। यह सिंह-विक्रीड़त व्रत है। सन् १९४१ में टांकाटूंका (गुजरात) में चौमासेमें सर्वतोभद्र व्रत किया, जिसमें एक उपवाससे सात उपवास तक चढ़ना और फिर सातसे क्रमशः एक उपवास तक आना और इस तरह साढ़े आठ महीनेमें केवल ४९ आहार और २४५ उपवास किये। सन् १९४७ में अजमेरमें ढाई माह तक जलका त्याग और केवल छाछका ग्रहण किया। सन् १९४८ में ब्यावरमें केवल अन्न (दाल-रोटी) का ग्रहण और जलका त्याग किया। सन् १९३५ में देहलीमें दूसरे चातुर्मासमें लगातार चार-चार उपवास किये और इस तरह कई उपवास किये। सन् १९५२ में भी तीसरे चातुर्मासके आरम्भमें देहलीमें आपने २० दिन तक अन्न और जलका त्याग किया तथा सिर्फ फल ग्रहण किये। महीनों आपने सिर्फ एक पैरके बलपर रहकर तपस्या की।

नमकका त्याग तो आपने कोई २७, २८ वर्षकी अवस्थामें ही कर दिया था और छह रसका त्याग भी आपने पौने दो वर्ष तक किया। इस तरह आपका तमाम साधुजीवन त्याग और तपस्यासे ओत-प्रोत रहा।

ध्यान और ज्ञान

बागपत (मेरठ) में जब आप एक डेढ़ माह रहे तो वहाँ जमनाके किनारे चार-चार घंटे ध्यानमें लीन रहते थे। बड़ेगाँव (मेरठ) में जाड़ोंमें अनेक रात्रियाँ छतपर बैठकर ध्यानमें बितायीं। पावागढ़ (बड़ोदा), तारंगा आदिके पहाड़ोंपर जाकर वहाँ चार-चार घंटे समाधिस्थ रहते थे।

तपोबलका प्रभाव और महानता

आपके जीवनकी अनेक उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं। जोधपुरमें आपके नेत्रोंकी ज्योति चली गई और इससे जनतामें सर्वत्र चिन्ताकी लहर फैल गई, किन्तु आप इस दैविक विपत्तिसे लेशमात्र भी नहीं घबराये और आहार-जलका त्यागकर समाधिमें स्थित हो गये। अन्तमें सातवें दिन आपको अपने तपोबल और आत्मनिर्मलताके प्रभावसे आँखोंकी ज्योति पुनः पूर्ववत् प्राप्त हो गई। उस मरुभूमिमें ग्रीष्मऋतुमें, जहाँ दर्शकोंके पैरोंमें फोले पड़ जाते थे, बालूमें तीन-तीन घंटे आप ध्यान करते थे।

पीपाड़ (जोधपुर) में ५००० हजार हरिजनोंको वैयावृत्य तथा दर्शन करनेका आपने अवसर दिया तथा उनकी इच्छाको तृप्त करके धर्मपूर्वक अपना जीवन बितानेका उन्हें सन्देश दिया।

१५ दिसम्बर १९५० में जब आपको आहारके लिये जाते समय मालूम हुआ कि संयुक्त भारतके महान् निर्माता स्व० उपप्रधानमंत्री सरदार बल्लभभाई पटेलका बम्बईमें देहावसान हो गया तो आपने आहार त्याग दिया और उपवास किया।

आप कितने गुणग्राही, निस्पृही और विनयशील रहे, यह आपके द्वारा चारित्रचक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागरजी महाराज और श्री १०५ क्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णी न्यायाचार्यको लिखे गये पत्रोंसे विदित होता है और जिनमें उनकी गुणग्राहकता और विनयशीलताका अच्छा परिचय मिलता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उनका निधन

२२ अक्तूबर १९५६ का दुःखद दिन चिरकाल तक याद रहेगा। इस दिन १२ बजे श्री सिद्धक्षेत्र सम्मेदशिखरजीकी पावन भूमि (ईशरी-पारसनाथ) में जहाँ २० तीर्थंकरों और अगणित ऋषियोंने तप व निर्वाण प्राप्त किया, इस युगके इस अद्वितीय तपस्वीने समाधिपूर्वक देह त्याग किया। ढाई घण्टे पूर्व साढ़े नौ बजे उन्होंने आहारमें जल ग्रहण किया। दो दिन पूर्वसे ही अपने देहत्यागका भी संकेत कर दिया। क्षु० श्री गणेश प्रसादजी वर्णी, भगत प्यारेलालजी आदि त्यागीगणने उनसे पूछा कि 'महाराज, सिद्धपरमेष्ठीका स्मरण है ?' महाराजने 'हूँ' कहकर अपनी जागृत अवस्थाका उन्हें बोध करा दिया। ऐसा उत्तम सावधान पूर्ण समाधिमरण सातिशय पुण्यजीवोंका ही होता है। आचार्य नमिसागरजीने घोर तपश्चर्या द्वारा अपनेको अवश्य सातिशय पुण्यजीव बना लिया था।

एक संस्मरण

जब वे बड़ौतमें थे, मैं कुंथलगिरिसे आकर उनके चरणोंमें पहुँचा और आचार्य शान्तिसागरजी महाराजकी उत्तम समाधिके समाचार उन्हें सुनाये तथा जैन कालेज भवनमें आयोजित सभामें भाषण दिया तो महाराज गद्गद होकर रोने लगे और बोले—'गुरु चले गये और मैं अधम शिष्य रह गया।' मैंने महाराजको धैर्य बंधाते हुए कहा—'महाराज आप विवेकी वीतराग ऋषिवर हैं। आप अधीर न हों। आप भी प्रयत्न करें कि गुरुकी तरह आपकी भी उत्तम समाधि हो और वह श्री सिद्धक्षेत्र सम्मेद शिखरपर हो। वहाँ वर्णीजीका समागम भी प्राप्त होगा।' महाराज धैर्यको बटोरकर तुरन्त बोले कि—'पंडितजी, ठीक कहा, अब मैं चातुर्मास समाप्त होते ही तुरन्त श्री सम्मेद शिखरजीके लिये चल दूँगा और वर्णीजीके समागमसे लाभ उठाऊँगा।'

उल्लेखनीय है कि चातुर्मास समाप्त होते ही महाराजने बड़ौतसे विहार कर दिया। जब मैं उनसे खुर्जामें दिसम्बर-जनवरीमें मिला तो देखा कि महाराजके पैरोंमें छाले पड़ गये हैं। मैंने महाराजसे प्रार्थना की कि—'महाराज जाड़ोंके दिन हैं। १० मीलसे ज्यादा न चलिए।' तो महाराजने कहा कि—'पंडितजी, हमें फाल्गुनकी अष्टान्हिकासे पूर्व शिखरजी पहुँचना है। यदि ज्यादा न चलेंगे तो उस समय तक नहीं पहुँच पायेंगे।' महाराजकी शरीरके प्रति निस्पृहता, वर्णीजीसे ज्ञानोपार्जनकी तीव्र अभिलाषा और श्रीसम्मेदशिखरजीकी ओर शीघ्र गमनोत्सुकता देखकर अनुभव हुआ कि आचार्यश्री अपने संकल्पकी पूर्तिके प्रति कितने सुदृढ़ हैं। उनके देहत्यागपर श्री दि० जैन लालमन्दिरजीमें आयोजित श्रद्धाञ्जलि-सभामें महाराजके अध्यवसायकी प्रशंसा करते हुए ला० परसादीलाल पाटनीने कहा था कि 'बड़े महाराजको अन्न त्याग किये २॥ वर्ष हो गया और हम सब लोग असफल हो गये तो आ. नमिसागरजी महाराजने अजमेरसे आकर दिल्लीमें चौमासा किया और हरिजन मन्दिर-प्रवेश समस्याको अपने हाथमें लेकर ६ माहमें ही हल करके दिखा दिया।' यथार्थमें उक्त समस्याको हल करनेवाले आचार्य नमिसागरजी महाराज ही हैं। आचार्य महाराजने अपनी कार्यकुशलता और बुद्धिमत्तासे ऐसी-ऐसी अनेक समस्याओंको हल किया, किन्तु उनके श्रेयसे वे सदैव अलिप्त रहे और उसे कभी नहीं चाहा। उनमें वचनशक्ति तो ऐसी थी कि जो बात कहते थे वह सत्य सावित होती थी।

देहत्यागसे ठीक एक मास पूर्व २३ सितम्बर '५६ को जब मैं संस्था (समन्तभद्र संस्कृत विद्यालय, देहली) की ओरसे वर्णी-जयन्तीपर उनके चरणोंमें पहुँचा, तो महाराज बोले—'पंडितजी, आपको मेरे समाधिमरणके समय आना है।' महाराजके इन शब्दोंको सुनकर मैं चौंक गया और निवेदन किया कि 'महाराज

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह क्या कहते हैं। चातुर्मास बाद तो आपको दिल्ली चलना है। दिल्लीकी समाज और जैन अनाथाश्रम आपको लानेके लिये उत्सुक हैं। महाराज चुप रह गये। पर उनका संकेत उनकी सौम्य मुखाकृतिसे मुझे उनकी समाधिके अवसरपर आनेके लिये ही था। महाराजकी आज्ञा शिरोधार्य करते हुए चिन्ताके साथ कहा— 'महाराज, चरणोंमें अवश्य उपस्थित होऊँगा।'

उसी समय एक पत्र ला० सरदारीमलजी गोटेवालों और एक पत्र आश्रम-मंत्री ला० रघुवीरसिंह कोठीवालोंको लिखा और उसमें महाराजके चिन्ताजनक स्वास्थ्यका उल्लेख करते हुए वैद्यराज कन्हैयालाल जी आयुर्वेदाचार्य प्रधान चिकित्सक जैन औषधालय, देहलीको शीघ्र भेजनेके लिए प्रेरणा की। वैद्यजी महाराजके चरणोंमें पहुँच गये और उन्होंने २२ दिन तक महाराजकी पूरी वैयावृत्य की।

किन्तु हम जाते-जाते रह गये। हमलोग यही सोचते रहे कि महाराज अपनी असाधारण तपःशक्तिके प्रभावसे अभी हमलोगोंके मध्यमें अवश्य रहेंगे। किन्तु जिनके चरण-सान्निध्यमें पिछले छह वर्षोंमें सैकड़ों बार आया, गया और स्वाध्याय कराया। उनके तपसे प्रभावित होकर उनका भक्त बना और मेरे ही परामर्शसे वर्णीजीके समागममें सम्मेदशिखर सिद्ध क्षेत्रपर जानेका उन्होंने निश्चय किया। पर समाधिमरणके समय न पहुंच सका।

ऐसे महान् तपस्वीको शत-शत वन्दन है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org